Quest Journals
Journal of Research in Humanities and Social Science
Volume 2 ~ Issue 6 (2014) pp: 72-78
ISSN(Online):2321-9467
www.questjournals.org

Research Paper

कबीर दास के काव्य में समाज चिंतन

सिया राम मीणा
(व्याख्याता–हिन्दी) , बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय , अलवर , (राज.) 301001

शोध सारांश

कबीर का अवतरण जिस काल खण्ड में हुआ, उस समय समाज नाना प्रकार की विच्छुंखलताओं से गुजर रहा था । एक तो इस्लाम के आगमन के पूर्व ही भारतीय सामंतवादी ढाँचा सामाजिक रूढ़ियों के चलते वेगहीन हो चला था । उसकी शोषणवादी प्रवृत्ति दिन–प्रतिदिन बढती ही जा रही थी दूसरी और इस्लाम के आगमन ने इस सामाजिक जटिलता को और भी अधिक जटिल बना दिया । यद्यपि प्रतिक्रियात्मक तौर पर समाज की जड़ता में तूफानी विक्षोभ उमड़ा, जिसने समूचे समाज को आत्मनिरीक्षण का अवसर प्रदान किया । लेकिन समाज की जड़ता एवं विच्छुंखलता में किंचित कमी होने की बजाए उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी । समूचे भारतीय परिवेश के धार्मिक होने के कारण शोषण का स्वरूप भी बहुत कुछ धार्मिक लबादा ही ओढ़े था । परन्तु इस समूची विच्छुंखलता का एक धनात्मक परिणाम यह हुआ कि भारतीय समाज का आत्म निरीक्षण दिन प्रतिदिन प्रबल हुआ और किंचित कबीर जैसे महापुरुष संक्रमण काल की इन्हीं स्थितियों के परिणाम थे । इस्लामी शासन में भारतीय सामंतवादी शासन की जडे और भी मजबूत हो गई थीं । सामंतवादी ढाँचे के शोषण का मुख्य आधार देहवाद और अर्थवाद था । देहवाद के अन्तर्गत समूचा समाज विलासी प्रवृत्ति का हो चला था । स्त्री उपभोग्य वस्तु हो गयी थी और नारी की स्वतंत्रता अपदस्थ हो जाने के कारण सामाजिक जड़ता बढती चली जा रही थी । वैसे भी यह मनोवैज्ञानिक सन्दर्भ है कि जिस समाज में देहवाद को प्राथमिकता दी जाती है, उस समाज को अपने उत्कर्ष के विषय में चिन्ता करने का अवसर नहीं मिल पाता है । इस्लामी शासकों की विलासी प्रवृत्ति के कारण ऐन्द्रियवाद के प्रभुत्व ने समाज को पतनोन्मुख बना दिया ।

परिचय :–

कबीरदास या कबीर 15वीं सदी के भारतीय रहस्यवादी कवि और संत थे। वे हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के निर्गुण शाखा के ज्ञानमर्गी उपशाखा के महानतम कवि हैं। इनकी रचनाओं ने हिन्दी प्रदेश के भक्ति आंदोलन को गहरे स्तर तक प्रभावित किया। उनकी रचनाएँ सिक्खों के आदि ग्रंथ में सम्मिलित की गयी हैं।(1)(2) वे हिन्दू धर्म व इस्लाम को मानते हुए धर्म एक सर्वोच्च ईश्वर में विश्वास रखते थे। उन्होंने सामाज में फैली कुरीतियों, कर्मकांड, अंधविश्वास की निंदा की और सामाजिक बुराइयों की कड़ी आलोचना भी। उनके जीवनकाल के दौरान हिन्दू और मुसलमान दोनों ने उन्हें बहुत सहयोग किया। कबीर पंथ नामक सम्प्रदाय इनकी शिक्षाओं के अनुयायी हैं।(4) हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन्हें मस्तमौला कहा। कबीर साहब का जन्म कब हुआ, यह ठीक–ठीक ज्ञात नहीं है। मोटे तौर पर उनका जन्म 14वीं–15वीं शताब्दी में काशी (वर्तमान समय का वाराणसी) में हुआ था। एक मान्यता के अनुसार उनका जन्म सन 1398 (संवत 1455), में ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को ब्रह्ममूहर्त के समय हुआ था। उनकी इस लीला को उनके अनुयायी कबीर साहेब प्रकट दिवस के रूप में मनाते हैं। वे जुलाहे का कम करते थे।

भाषा :–

कबीर की भाषा सधुक्कड़ी एवं पंचमेल खिचड़ी है। इनकी भाषा में हिंदी भाषा की सभी बोलियों के शब्द सम्मिलित हैं। राजस्थानी, हरयाणवी, पंजाबी, खड़ी बोली, अवधी, ब्रजभाषा के शब्दों की बहुलता है। ऐसा माना जाता है की रमैनी और सबद में ब्रजभाषा की अधिकता है तो साखी में राजस्थानी व पंजाबी मिली खड़ी बोली की।

कृतियां :–

क्षितिमोहन सेन ने कबीर साहेब जी द्वारा लिखित मुख्य रूप से छह ग्रंथ हैं:

कबीर साखी: इस ग्रंथ में कबीर साहेब जी साखियों के माध्यम से सुरता (आत्मा) को आत्म और परमात्म ज्ञान समझाया करते थे।

कबीर बीजकः कबीर की वाणी का संग्रह उनके शिष्य धर्मदास ने बीजक नाम से सन् 1464 में किया। इस ग्रंथ में मुख्य रूप से पद्य भाग है।

कबीर शब्दावलीः इस ग्रंथ में मुख्य रूप से कबीर साहेब जी ने आत्मा को अपने अनमोल शब्दों के माध्यम से परमात्मा कि जानकारी बताई है।

कबीर दोहवालीः इस ग्रंथ में मुख्य तौर पर कबीर साहेब जी के दोहे सम्मलित हैं।

कबीर ग्रंथावलीः इस ग्रंथ में कबीर साहेब जी के पद व दोहे सम्मलित किये गये हैं।

कबीर सागरः यह सूक्ष्म वेद है जिसमें परमात्मा कि विस्तृत जानकारी है।

कबीर पढ़े लिखे नहीं थे, इसलिए उनके दोहों को उनके शिष्यों द्वारा ही लिखा या संग्रीहित किया गया था। उनके दो शिष्यों, भागोदास और धर्मदास ने उनकी साहित्यिक विरासत को संजोया। कबीर के छंदों को सिख धर्म के ग्रंथ "श्री गुरुग्रन्थ साहिब" में भी शामिल किया गया है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब में संत कबीर के 226 दोहे शामिल हैं और श्री गुरु ग्रंथ साहिब में शामिल सभी भक्तों और संतों में संत कबीर के ही सबसे अधिक दोहे दर्ज किए गए हैं। क्षितिमोहन सेन ने कबीर के दोहों को काशी सहित देश के अन्य भागों के सन्तों से एकत्र किया था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इनका अंग्रेजी अनुवाद करके कबीर की वाणी को विश्वपटल पर लाये। हिन्दी में बाबू श्यामसुन्दर दास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी सहित अनेक विद्वानों ने कबीर और उनकी साहित्यिक साधना पर ग्रन्थ लिखे हैं।

धर्म के प्रति :–

कबीर साहेब जी के यहाँ साधु संतों का जमावड़ा रहता था। कबीर साहेब जी ने कलयुग में पढ़े–लिखे ना होने की लीला की, परंतु वास्तव में वे स्वयं विद्वान है। इसका अंदाजा आप उनके दोहों से लगा सकते हैं जैसे – 'मसि कागद छुयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ। 'उन्होंने स्वयं ग्रंथ ना लिखने की भी लीला तथा अपने मुख कमल से वाणी बोलकर शिष्यों से उन्हे लिखवाया। आप के समस्त विचारों में रामनाम (पूर्ण परमात्मा का वास्तविक नाम) की महिमा प्रतिध्वनित होती है। कबीर परमेश्वर एक ही ईश्वर को मानते थे और कर्मकाण्ड के घोर विरोधी थे। मूर्तिपूजा, रोज़ा, ईद, मस्जिद, मंदिर उनका विचार था की इन क्रियाओं से आपका मोक्ष संभव नहीं।

वे कहते हैं–

'हरिमोर पिउ, मैं राम की बहुरिया' तो कभी कहते हैं, 'हरि जननी मैं बालक तोरा'।

और कभी "बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर। पंछी को छाया नहीं फल लागे अति दूर ॥ "

उस समय हिंदू और मुस्लिम दोनों धर्म के लोग ही कबीर साहेब जी को अपना दुश्मन मानते थे क्योंकि वे अपना इकतारा लेकर दोनों धर्मों को परमात्मा की जानकारी दिया करते थे, वे समझाते थे कि हम सब एक ही परमात्मा के बच्चे हैं । उन्होंने अपनी भाषा सरल और सुबोध रखी ताकि वह आम आदमी तक पहुंच सके। कबीर साहेब जी को शांतिमय जीवन प्रिय था और वे अहिंसा, सत्य, सदाचार आदि गुणों के प्रशंसक थे। अपनी सरलता, साधु स्वभाव तथा संत प्रवृत्ति के कारण आज विदेशों में भी उनका समादर हो रहा है। कबीर साहेब जी सिर्फ मानव धर्म में विश्वास रखते थे।

'पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजौं पहार।

वा ते तो चाकी भली, पीसी खाय संसार।।'

कबीर माया पापणी, फंध ले बैठी हटी ।

सब जग तौं फंधै पड्या, गया कबीरा काटी ॥

अर्थ – कबीर दास जी कहते है की यह पापिन माया फंदा लेकर बाज़ार में आ बैठी है । इसने बहुत लोगों पर फंदा डाल दिया है , पर कबीर ने उसे काटकर साफ़ बाहर निकल आयें है । हरि भक्त पर फंदा डालने वाला खुद ही फंस जाता है ।

दोहे

कबीर साहेब जी के प्रसिद्ध दोहेः

कबीर,हाड़ चाम लहू ना मेरे, जाने कोई सतनाम उपासी।

तारन तरन अभय पद दाता, मैं हूं कबीर अविनाशी।।

भावार्थः कबीर साहेब जी इस वाणी में कह रहे हैं कि मेरा शरीर हड्डी और मांस का बना नहीं है। जिसको मेरा द्वारा दिया गया सतनाम और सारनाम प्राप्त है, वह मेरे इस भेद को जानता है। मैं ही सबका मोक्षदायक हूँ, तथा मैं ही अविनाशी परमात्मा हूँ।

क्या मांगुँ कुछ थिर ना रहाई, देखत नैन चला जग जाई। एक लख पूत सवा लख नाती, उस रावण कै दीवा न बाती।

भावार्थः यदि एक मनुष्य अपने एक पुत्र से वंश की बेल को सदा बनाए रखना चाहता है तो यह उसकी भूल है। जैसे लंका के राजा रावण के एक लाख पुत्र थे तथा सवा लाख नाती थे। वर्तमान में उसके कुल (वंश) में कोई घर में दीप जलाने वाला भी नहीं है। सब नष्ट हो गए। इसलिए हे मानव! परमात्मा से तू यह क्या माँगता है जो स्थाई ही नहीं है।

सतयुग में सतसुकृत कह टेरा, त्रेता नाम मुनिन्द्र मेरा। द्वापर में करुणामय कहलाया, कलयुग में नाम कबीर धराया।।

भावार्थः कबीर परमेश्वर चारों युगों में आते हैं। कबीर साहिब जी ने बताया है कि सतयुग में मेरा नाम सत सुकृत था। त्रेता युग में मेरा नाम मुनिंदर था द्वापर युग में मेरा नाम करुणामय था और कलयुग में मेरा नाम कबीर है।

कबीर, पत्थर पूजें हरि मिले तो मैं पूजूँ पहार। तातें तो चक्की भली, पीस खाये संसार।।

भावार्थः कबीर साहेब जी हिंदुओं को समझाते हुए कहते हैं कि किसी भी देवी–देवता की आप पत्थर की मूर्ति बनाकर उसकी पूजा करते हैं जो कि शास्त्र विरुद्ध साधना है। जो कि हमें कुछ नही दे सकती। इनकी पूजा से अच्छा चक्की की पूजा कर लो जिससे हमें खाने के लिए आटा तो मिलता है।

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान। मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान ।।

भावार्थः परमात्मा कबीर जी हिंदुओं में फैले जातिवाद पर कटाक्ष करते हुए कहते थे कि किसी व्यक्ति से उसकी जाति नहीं पूछनी चाहिए बल्कि ज्ञान की बात करनी चाहिए। क्योंकि असली मोल तो तलवार का होता है, म्यान का नहीं।

माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर। कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर।।

भावार्थः कबीर साहेब जी अपनी उपरोक्त वाणी के माध्यम से उन लोगों पर कटाक्ष कर रहे हैं जो लम्बे समय तक हाथ में माला तो घुमाते है, पर उनके मन का भाव नहीं बदलता, उनके मन की हलचल शांत नहीं होती। कबीर जी ऐसे व्यक्ति को कहते हैं कि हाथ की इस माला को फेरना छोड़ कर मन को सांसारिक आडंबरों से हटाकर भक्ति में लगाओ।

मानुष जन्म दुर्लभ है, मिले न बारम्बार । तरवर से पत्ता टूट गिरे, बहुरि न लागे डारि ।।

भावार्थः परमात्मा कबीर जी हिन्दू और मुस्लिम दोनों को मनुष्य जीवन की महत्ता समझाते हुए कहते हैं कि मानव जन्म पाना कठिन है। यह शरीर बार–बार नहीं मिलता। जो फल वृक्ष से नीचे गिर पड़ता है वह पुनः उसकी डाल पर नहीं लगता। इसी तरह मानव शरीर छूट जाने पर दोबारा मनुष्य जन्म आसानी से नही मिलता है, और पछताने के अलावा कोई चारा नहीं रह जाता।

पानी केरा बुदबुदा, अस मानस की जात । एक दिना छिप जाएगा, ज्यों तारा परभात ।।

भावार्थः कबीर साहेब लोगों को नेकी करने की सलाह देते हुए इस क्षणभंगुर मानव शरीर की सच्चाई लोगों को बता रहे हैं कि पानी के बुलबुले की तरह मनुष्य का शरीर क्षणभंगुर है। जैसे प्रभात होते ही तारे छिप जाते हैं, वैसे ही ये देह भी एक दिन नष्ट हो जाएगी।

ऐसे समाज को देखकर कबीर जैसे पुरुष का हृदय रो पड़ा । वस्तुतः कबीर की सामाजिक चिन्ता उस सच्चे आध्यात्मिक व्यक्तित्व की चिता थी जो मानवतावाद, सर्वात्मवाद अद्वैतवाद की दृष्टि से समाज को जानता–पहचानता है । यह सुस्पष्ट तथ्य है कि कबीर की मूल चिन्ता आध्यात्मिक है, लेकिन अध्यात्म के क्षेत्र में उनका सजग व सचेत व्यक्तित्व प्रकाश में आता है । यह इस बात का प्रमाण है कि उनकी सामाजिक चिन्ता आध्यात्मिक चिता से कम नहीं है । चूंकि कबीर का अध्यात्म आकाशीय नहीं था जमीन के सच से जुडा था उनके जैसे अनत के सत्य के राही के लिए समाज भला अलग

कैसे रह सकता था । इन्हीं सन्दर्भो में कबीर जैसे आध्यात्मिक व्यक्तित्व के समाजवाद में जनवाद की तलाश करना अयुक्तिगत व अप्रासंगिक नहीं होगा ।

यद्यपि कबीर की सामाजिक चिन्ता कही भी राजनीतिक परिदृश्य से सीधे नहीं टकराती है जबकि उस समय की सामाजिक विच्छृंखलता पूरी सामाजिक व्यवस्था पर हावी थी । यह प्रश्न विचारणीय अवश्य है कि उनकी अध्यात्म दृष्टि में राजनीति का महत्व, समाज से बढ़कर नहीं हो सकता ।

उनकी बानियों में ऐसे स्थल देखने में आते हैं जहाँ परोक्ष रूपेण तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था पर प्रहार है । जब वे समूची सामाजिक व्यवस्था पर प्रहार करते हैं, जड़ व्यवस्था पर प्रहार करते हैं, तब यह बात सिद्ध हो जाती है कि वे सामाजिक, सांस्कृतिक व्यवस्थाओं के अतिरिक्त राजनीतिक व्यवस्था पर भी प्रहार कर रहे हैं, यथा–निम्नलिखित साखी में उनकी पीड़ा की वे गहरी रेखाएँ उभरती हैं, जो तत्कालीन व्यवस्था का मुखौटा खोलती हैं–

चलती चाकी देख के दिया कबीरा रोय ।

दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय । ।

इस साखी का केवल आध्यात्मिक अर्थ ही यथेष्ट नहीं है बल्कि सामाजिक सरोकारों से इसका संबंध है । अपनी आध्यात्मिक सोच के आलोक में कबीर समाज के लिए जो दर्शन देते हैं, उनमें भी उनका विद्रोही तेवर उभरकर सामने आता है ।

इसका कारण है यथार्थवादी सोच के धरातल पर कबीर इस बात से आश्वस्त थे कि जड समाज ऐसी ही वाणी से चेत सकता है जो उसे अपने गति के प्रतिकूल लगे, और ऐसी स्थिति में व्यंग्य और उपहास अनिवार्य तरीका हो जाता है । कबीर देहवादी सामाजिक व्यवस्था को ललकारते हुए, नरक की घोषणा करते हैं ।

वे कहते हैं "नारी माया है, ठगिनी है ।" ऐसे समय में वे सती नारी का आदर्श समाज के सामने रखते हैं, जब समाज नारी को भोग्या ही मानता था । अर्थवाद के खिलाफ भी कबीर विद्रोही तेवर में समाज को प्रबोध देते हैं–

मन बनिया बनिज न छोड़े, जनम–जनम का मारा बनिया

अजहूँ घूर न तोले ।"

कबीर जानते थे कि समाज के पतन की जड़ अहंकार और अहंकार की जड़ पूंजी का संचय है ।

स्थिति में वह सामाजिक नश्वरता के प्रति समाज को सचेत करते हैं–

चलत का फूले फूले हो चलत का टेढ़े–देते हो

सामंतवादी व्यवस्था में कबीर बेहतर ढंग से जानते थे कि उनकी बातों से समाज का शोषक वर्ग चिढ रहा है । अपनी इस वेदना से परिचित कराते वह कहते हैं–

साँच कहौं तो मारन धावै,

झूठे जग पतियाना ।

कबीर समूची सामंतवादी व्यवस्था के खिलाफ थे वे पूंजीवादी व अर्थव्यवस्था की परिणति नरक बताते हैं और अपने आध्यात्मिक ढंग से समाज को सचेत करते हैं–

यह ऐसा संसार है

जैसा सेमर फूल,

यह उल्लेखनीय तथ्य है कि कबीर जैसा आध्यात्मिक व्यक्तित्व जो कि रहस्यवादी पदों को गाते नहीं थकता है, वह भाग्यवादी आधार पर कोई बात नहीं कहता बिना उसे अनुभव की कसौटी पर कसे । जनवादी व्यवस्था के अन्तर्गत विवेकवाद को महत्व दिया जाता है । यह अपेक्षा की जाती है कि समाज सारे अंधविश्वास के खिलाफ विवेक का अवलम्ब ग्रहण करे । कबीर की सामाजिक सोच में विवेकवाद स्पष्टतः परिलक्षित होता है ।

*Corresponding Author: सिया राम मीणा

वह समूची व्यवस्था से अपना अलगाव करते हुए समाज के रूढ़िवादी वर्ग को ललकारते हुए कहते हैं–

तू कहता कागद की लेखी,

मैं कहता आंखन की देखी ।

अनुभूति की कसौटी पर ही सत्य को परखने के कारण कबीर की दृष्टि सामाजिक व्यवस्था के मूल में बहुत गहरी हो जाती है । वह व्यक्तिवादी व्यवस्था के खिलाफ है, जिसमें स्वार्थ का ही बोलबाला है । इसी स्थिति को लक्षित करते हुए कहते हैं कि चारों तरफ आग लगी हुई है, मनुष्य को चाहिए कि वह मानवतावादी चरम सत्य के मूल्यों के जल से इस आग को बुझा ले–

कबीर चित्त चमंकिया चहुँदिसि लागी आगि ।

हरि सुमिरन हाथुं घड़ा बेगे लेहु बुझाइ ।

कबीर के राम, गोविन्द, अलख निरंजन सामाजिक सन्दर्भ में चरम उदात्त मानवीय मूल्यों के समवाय है ।

वे सत्य को ही ईश्वर बताते हैं–

साँच बराबर तप नहीं

कबीर का यह कथन है कि जब तक व्यक्तिवाद का समष्टिवाद में विलय नहीं हो जायेगा तब तक अपेक्षित समाज व्यवस्था को हम प्राप्त नहीं कर सकते ।

इसलिए वे कहते हैं–

मैमंता मन मारि रे

कबीर इस सत्य से बेहतर ढंग से परिचित थे कि समाज के पतन की जड–वर्ग भेद एवं जाति भेद में निहित है । इस्लाम के आने के पूर्व तक सनातनी हिन्दू व्यवस्था में वर्णाश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत पहले जातिभेद पनपा और फिर जातिभेद ने वर्ण भेद का रूप धारण किया फिर इस्लाम के आने के बाद सम्प्रदाय–भेद और जुड़ गया ।

अब इन तीनों भेदों के बीच समाज में सामंजस्य व संतुलन स्थापित हो तो किस तरह । एंगेल्स शोषणवाद, पूंजीवादी के मूल में, परिवार, पूंजी सम्पत्ति, को जिम्मेदार मानता था । कबीर इन्हीं तीनों को माया कहते हैं । वे माया को वैश्या, डहडही, विष की बेल, बताते हैं । शोषणवादी व्यवस्था का प्रमुख विकार बताते हैं । ये शोषक व शोषित दोनों का रक्त चूसती हैं । कबीर सभी प्रकार के भेद की जड़ ही मिटा देना चाहते हैं ।

जातिभेद के खिलाफ वे सनातनी हिन्दुओं को फटकारते हुए थकते नहीं–

'एक बूद एककै मलमूतर, एक चाम एक गुदा ।

एक ज्योति थैं सब उपजना को वामन को सूदा ।।'

सम्प्रदायवाद के खिलाफ उनकी भाषा और उग्र हो जाती है–

'अरे इन दोउन राह न पाई ।

हिन्दू अपनी करैं बड़ाई गागर छुअन न देई । ।

वेश्या के पावन तर सोवै यह देखों हिन्दुआई ।

मुसलमान के पीर औलिया मुर्गा–मुर्गी खाई ।।'

कबीर प्रत्येक सामाजिक रूढ़ि के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करते हैं । इन्हें उन बाह्य आडम्बरों तीर्थ, रोजा, नमाज से चिढ़ है जिनके चलते समाज आपस में लड रहा है ।

वे प्रत्येक प्रकार के बाह्य आडम्बर को निसार बताते हैं–

'काजी तै कौन कतेब बखानी

*Corresponding Author: सिया राम मीणा

पोथी पड पड़ जग३.

चली हैं कुल बोरनी गंगा नहाय'

इस प्रकार कबीर समाज की संवेदनात्मक रूढ़ियों पर बहुत तीखा प्रहार करते हैं, जिससे सम्बन्धित वर्ग तिलमिला–सा जाता है । हिन्दुओं और मुसलमानों के साम्प्रदायिक विद्वेष से समाज चरमराकर टूट रहा था, कबीर दोनों की पोल खोल देते हैं–

'सन्तो राह दुनौ हम दीठा ।

हिन्दु तुर्क हठी नहिं मानै स्वाद सबनि को मीठा ।।'

ऐसा नहीं है कि कबीर सामाजिक व्यवस्था के समक्ष केवल प्रश्नचिन्ह ही लगाते हैं । प्रश्न के अलावा वे समाधान भी देते हैं । उन्होंने उस समूची भेदवादी व्यवस्था के लिए आज से 600 वर्ष पहले ही वह मानवतावादी समाधान पद्धति प्रदान की थी जिसे आज अत्यन्त प्रगतिवादी जन–व्यवस्था के रूप में लक्षित किया जाता है ।

कबीर इस टूटते हुए समाज के लिए रास्ता देते हैं । यह दूसरी बात है कि, कबीर की कसौटियाँ अत्यन्त जटिल हैं, लेकिन यदि विचार किया जाए तो सर्वाश्लाध्य लाख प्रश्नों का एक समाधान वे राम के प्रति प्रेम से देते हैं । सामाजिक सन्दर्भ में इनके राम उदात्त मानवीय मूल्यों के समवाय है ।

इस प्रेम की कसौटी अत्यन्त खरी है । वे कहते है, 'कबीर यह घर प्रेम की खाला का घर नाहि' । प्रेम तो सूली ऊपर नट विद्या है । जो आत्म–बलिदान के लिए प्रस्तुत हो वही इस उदात्त तत्व का आनंद भी पा सकता है, किन्तु यह जनवादी व्यवस्था का प्राण तत्व है ।

कबीर इसी प्रेम के सहारे समूची जनवादी व्यवस्था के खिलाफ गतिशीलता की परिकल्पना करते हैं । वह ऐसे नेता (गुरु) और ऐसे समाज अनुपालनकर्ता, दोनों को फटकारते है जो अधकचरे एवं अधगामी होते हैं–

'दोनों डूबे धार में, चीड़ पाथर की नाव'

सामाजिक गतिशीलता के लिए कबीर बार–बार बताते हैं कि आत्मसंघर्ष आवश्यक है जिसके लिए पुरुषार्थ करना आवश्यक है–

'मन रे जागत रहियो भाई,

गफिल होइ खस्तु मत खोई,

चोर मुसै धर जाई । ।'

कबीर ने स्वयं आत्मसंघर्ष किया था जिसका ज्ञान उन्हें भली–भांति था । वह इसकी चरम परिणति और उसका चरम प्रतिफल अद्वैतपरक समाज की प्रतिष्ठा में मानते हैं । अद्वैतपरक व्यवस्था में भेद नाम की चीज नहीं है, जो भेद सभी प्रकार के शोषण का जन्मदाता है । अपने अपेक्षित संसार के बारे में वे कहते हैः

'सखि वह धर सबसे न्यारा, जहाँ पूरन पुरुष हमारा ।'

उक्त विवेचना के सन्दर्भ से हम देख चुके हैं कि जब वे समाज के धार्मिक संगठनात्मक ढाँचे मानवीय रूढ़ि व मूर्तियों के खिलाफ अपना असंतोष जाहिर कर रहे होते है तो उनकी सोच अधिक मुखरित होती है, जन्म से लेकर जीवनपर्यन्त और यहाँ तक कि मृत्यु तक कबीर के अपने जीवन का क्रान्तिकारी तेवर समाज के सन्दर्भ में यथावत लागू होता है ।

समाज का लेकर उनकी गहरी वेदना ही उनके विशुद्ध ध्यात्मिक दर्शन की भी प्रखर जनवादी दर्शन की प्रतिष्ठा करती है । यह उल्लेखनीय तथ्य है कि कबीर के समाज दर्शन की सम्प्रेषणीयता का धरातल पूर्ण यथार्थवादी है कवि आद्योपान्त जनभाषा का प्रयोग करता है ।

उनकी यह भाषिक दृष्टि उनके समाज दर्शन के सन्दर्भ में एक उपलब्धि है । उनकी भाषा में सामाजिक सरकारों से गहरा जुडाव लक्षित होता है और कही भी वह भावधारा में इतने नहीं वह जाते हैं कि ठोस, संवेदन धरातल से विचलित हों । उनकी संवेदना का धरातल ठोस है और सशक्त तर्क पद्धति पर आधारित है । इसी तर्क पद्धति के आधार पर वे अवधूत, पंडित, मुल्ला सभी को चुनौती देते हैं–

*Corresponding Author: सिया राम मीणा

बूझहु मोर गियाना

तू पण्डित मैं काशी का जुलाहा ।

निष्कर्ष :–

कबीर धर्म को रोटी का माध्यम नहीं बनाते हैं । 'झीनी–झीनी रे बीनी चदरियाँ' में जो आध्यात्मिक स्वरलहरी परिलक्षित होती है वह प्रकारान्तरेण श्रम के प्रति उनकी निष्ठा को उजागर करती है और सार्वजनिक मंत्री–मठाधीशी को चुनौती देती है । जो अध्यात्म ईश्वर को रोटी का माध्यम बनाकर लोगों को ठगता है वह कबीर को स्वीकार नहीं है । लोक रूपों और प्रतीकों में संवेगात्मक रूप से जो बात सम्प्रेषित करते हैं उसकी अर्थवत्ता और प्रमाणिकता ऐसा आदर्श इतिहास निर्मित करती है कि कहा जा सकता है कि सदियों बाद कबीर का समाज दर्शन आज भी प्रासंगिक है ।

सन्दर्भ सूची :–

1. कबीर द वेबैक मशीन एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (2015) 27 जुलाई 2015 को एक्सेस किया गया

2. ह्यूग टिंकर (1990)। दक्षिण एशियाः एक संक्षिप्त इतिहास। हवाई प्रेस विश्वविद्यालय। पीपी। 75–77। आईएसबीएन 978–0–8248–1287–4। दिनांक 12 जुलाई 2012।

3. कैरल हेंडरसन गार्सिया; कैरल ई. हेंडरसन (2002)। भारत की संस्कृति और रीति–रिवाज। ग्रीनवुड पब्लिशिंग ग्रुप। पीपी। 70–71। आईएसबीएन 978–0–313–30513–9। दिनांक 12 जुलाई 2012।

4. डेविड लोरेंजेन (संपादकः काराइन शोमर और डब्ल्यू.एच. मैकलियोड, 1987), द सेंट्सः स्टडीज इन ए डिवोशनल ट्रेडिशन ऑफ इंडिया, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशक, आईएसबीएन 978–81–208–0277–3, पृष्ठ 281–302

*Corresponding Author: सिया राम मीणा